विनोद रैना

जन–शिक्षा के लिए आजीवन संघर्ष
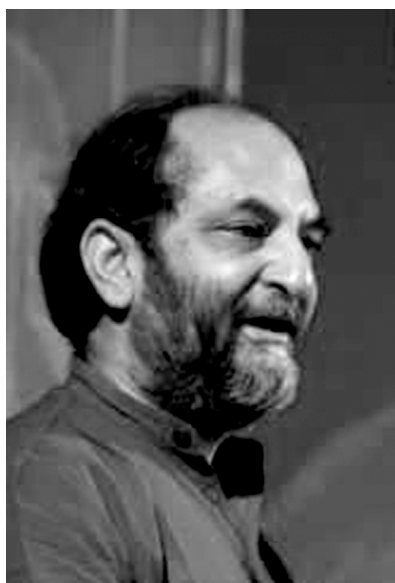
सी.एन. सुब्रह्मण्यम

अनुवाद : नरेश गोस्वामी

बीमारी से एक लम्बी जंग लड़ते हुए आख़िरकार विनोद रैना (1950–2013) बारह सितम्बर को हमारे बीच से चले गये। और अपने पीछे उपलब्धियों की एक विस्तृत और बहुरंगी विरासत छोड़ गये। उनकी इस विरासत में वे तमाम सहयोगी भी हिस्सेदार हैं जिन्हें विनोद ने अपनी शख़्सियत से सँवारा और प्रेरित किया था। विनोद स्वप्नदर्शी, अनथक योद्धा और योजनाकार भी थे। उनकी विरासत उत्कट कल्पना, गहरे विवादों और ठोस समाधान की एक ऐसी मिसाल है जो एक ही साथ मज़बूत, अनिश्चित और बहसतलब भी रही। यह स्मृति-लेख एक बेमिसाल दोस्त और उसके योगदान को याद करने की एक विनम्र सी कोशिश है, जो हमारे जैसा ही एक इनसान था।

कश्मीर और दिल्ली विश्वविद्यालय

विनोद का बचपन श्रीनगर में गुज़रा था। उन्हें अपने कश्मीरी होने पर फ़ख़्र था। घाटी के समुदायों के प्रति उनके मन में गहरा आदर था और वे गाहे–बगाहे इस बात का ज़िक्र करते रहते थे कि घाटी के

इस समाज ने अपनी विविधता कैसे क़ायम रखी। रिश्ते के इस ताने–बाने में विनोद वहाँ की प्रकृति, स्थापत्य, खान–पान, जबान, संगीत व ऋषियों और लल्ल दद के दौर से मौजूदा वक़्त तक चली आ रही साझी धार्मिक विरासत का भी ज़िक्र किया करते थे। कश्मीर के ज़ख़्मों— राज्य द्वारा बरपाई गयी हिंसा, कश्मीरियत के जज़्बे पर आतंकवाद की चोट और घाटी से पंडितों के पलायन को विनोद हर दम अपने साथ लिए फिरते थे। विनोद के दोस्तों को उनका दिलकश कहवा और कश्मीरी मिर्ची, सौंफ़ तथा सौंठ से बना खाना हमेशा याद रहेगा। अल्लामा इकबाल की प्रार्थना 'लब आती है दुआ बनके तमन्ना मेरी' उनके जीवन में अज़ान की तरह थी।

विनोद छठे दशक के आख़िरी और जुनूनी सालों में विज्ञान की पढ़ाई के लिए दिल्ली आये। यह वह समय था जब आज़ादी के बाद उभरी पहली पीढ़ी का मोहभंग होने लगा था। अपने कई साथियों की तरह विनोद ने भी नक्सल आंदोलन में शामिल होने के लिए बिहार का रुख किया और वहाँ उन्होंने अपने कई साथियों को असमय मौत का शिकार बनते देखा। इसके बाद उन्हें लगा कि समाज को बदलने के लिए ज़्यादा खुले और प्रभावशाली तरीक़ों की खोज करनी होगी। और, विनोद सामाजिक बदलाव की इस प्रतिबद्धता को मन में लिए वापस लौट आये। विनोद की भौतिक शास्त्र में रुचि थी जिसमें उन्होंने प्रोफ़ेसर प्रमोद भार्गव के निर्देशन में पीएच.डी. भी पूरी की। उन्होंने कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग में भी महारत हासिल की जो उस समय एक उभरता हुआ क्षेत्र था। कम्प्यूटर दक्षता की बदौलत उन्हें सुखमय चक्रवर्ती और सुमित सरकार जैसे समाज–वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने और विज्ञान के सामाजिक संदर्भ तथा उसका इस्तेमाल समझने का मौक़ा मिला। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में भी उनकी दिलचस्पी इसी दौर में परवान चढ़ी। संगीत कार्यक्रमों में जाने का सिलसिला शुरू हुआ और उनके पास रिकॉर्डिंग का अच्छा–ख़ासा जख़ीरा खड़ा हो गया। संगीत के प्रति उनमें एक जुनून–सा था जिसे कहवे के प्यालों के साथ अपने दोस्तों से बाँटना उन्हें खुशी से भर देता था। विनोद फ़ैज़ के ऐसे मुरीद थे कि कीर्नन के विख्यात संस्करण से उनकी नज़्म पढ़ने का कोई मौक़ा नहीं चूकते थे। फ़ैज़ की नज़्म 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरे महबूब न माँग' को विनोद बहुत नगमगी अंदाज़ में गाते थे।

होशंगाबाद : विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और एकलव्य

अनिल सद्गोपाल के संगठन किशोर भारती तथा सुदर्शन कपूर के नेतृत्व में फ्रैंड्स रूरल सेंटर ने 1972 में मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले में माध्यमिक स्कूल के स्तर पर विज्ञान शिक्षण का एक कार्यक्रम शुरू किया था। इस क्रम में दोनों संगठनों ने अनेक विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थानों से सहयोग के लिए दरयाफ़्त की। दिल्ली विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग ने सबसे जल्दी उत्तर दिया और अपने कई उत्साही अध्यापकों और छात्रों को होशंगाबाद रवाना किया। विनोद इसी खेप में शामिल थे। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की ताक़त उसकी बहुमुखी प्राश्निकता और कार्यों में निहित थी। कार्यक्रम विज्ञान शिक्षण के कुछ बुनियादी प्रश्नों से जूझ रहा था : विज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान का स्वरूप क्या है; उसका समुदाय के पूर्व–प्राकृतिक ज्ञान और समझ से क्या रिश्ता है; कक्षा की प्रक्रिया तथा अध्यापकों का विद्यार्थियों पर क्या प्रभाव पड़ता है; और खुद विद्यार्थियों के आपसी संबंध कैसे होने चाहिए; शिक्षा की बृहत्तर व्यवस्था का चरित्र और उसमें अध्यापक और अकादमिक जगत की सूरत कैसी है। इस कार्यक्रम की ख़ूबी यह थी कि उसने ऐसे हर मुद्दे को लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया के समक्ष ला खड़ा किया था। कहना न होगा कि तीसरे और चौथे दशक में नयी तालीम आंदोलन के बाद यह दूसरा मौक़ा था जब शैक्षिक क्षेत्र में किसी पहल ने परिवर्तनधर्मी बुद्धिजीवियों को इस क़दर आंदोलित किया था।

विनोद रैना होशंगाबाद कार्यक्रम के सूत्रधारों की मुख्य क़तार में शामिल हुए। उनके हिस्से में कार्यक्रम को ज़िला स्तर पर लागू करने की ज़िम्मेदारी आयी जिसे उन्होंने जी–जान से निभाया।

अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए चलाई जाने वाली कक्षाओं और महीने के आख़िर में आयोजित की जाने वाली बैठकों में भाग लेने वाले बहुत से अध्यापक आज भी याद करते हैं कि विनोद स्थानीय सामाजिक मुद्दों को कक्षा में पढ़ाये जा रहे विज्ञान के साथ किस आसानी से गूँथ डालते थे अध्यापकों के सामने विज्ञान की ज्ञान–मीमांसा तथा पद्धति के गहरे दार्शनिक सवालों का संसार खोल देते थे। इसी वक़्फ़े में उन्होंने जीवन भर साथ चलने वाले दोस्त और रिश्ते बनाये। इसी दौरान उनकी मुलाक़ात उस होशंगी लड़की अनीता रामपाल से हुई, जो बाद में उनकी जीवनसंगिनी बनी और दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापक भी।

किशोर भारती और फ्रैंड्स फ़ॉर रूरल सेंटर की दिलचस्पी शिक्षण कार्यक्रम के बजाय ग्रामीण विकास में ज्यादा थी। लिहाज़ा एक समय बाद यह तय किया गया कि स्कूली शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने के लिए नये संगठन की शुरुआत की जाए। नतीजतन, विनोद के नेतृत्व में समूह ने एक नयी संस्था की नींव रखी जिसका 1982 में *एकलव्य* के नाम से पंजीकरण कराया गया। संगठन का लक्ष्य सूक्ष्म स्तर पर आजमाये गये नवाचारों को बड़े पैमाने पर क्रियान्वित करना था। संगठन का प्राथमिक उद्देश्य यह था कि सरकारी क्षेत्र और स्वैच्छिक क्षेत्र के बीच आपसी सहयोग का ढाँचा कैसे क़ायम किया जाए। संगठन को इस बात का एहसास था कि सरकारी क्षेत्र अपनी समूची ताक़त और दूरगामी पहुँच के बावजूद नियमों की सख़्ती, लाल–फ़ीताशाही और पदानुक्रम की समस्याओं से ग्रस्त है, जबकि स्वयंसेवी क्षेत्र अपने समस्त नवाचार, लचीलेपन और स्कूली व्यवस्था के तमाम स्तरों की व्यापक जानकारी के बावजूद अपने काम का दायरा आगे नहीं बढ़ा सकता।

> विनोद और उनके सहयोगी *एकलव्य* में एक अलग तरह की व्यवस्था क़ायम करना चाहते थे। वे एकलव्य को उस समय की अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं की तर्ज पर एक व्यक्ति द्वारा नियंत्रित संगठन नहीं बनाना चाहते थे। उनके ज़ेहन में संगठन की एक ऐसी व्यवस्था थी जिसकी बागडोर किसी अजनबी सरकारी निकाय के बजाय परिषद के सक्रिय सदस्यों और संगठन के कर्मचारियों के हाथों में रहे। उन्होंने तय किया कि *एकलव्य* किसी एक परिसर में केंद्रित होने के बजाय कई ज़िलों में फैला होगा और उसके कई केंद्र होंगे जिन्हें स्वायत्त ढंग से काम करने का अधिकार होगा।

एकलव्य की प्रगति में किशोर भारती और फ्रैंड्स फ़ॉर रूरल सेंटर की पूर्वपीठिका तो ज़रूर शामिल थी लेकिन भौगोलिक पहुँच तथा स्कूली शिक्षा में विभिन्न क्षेत्रों को समाहित करने के लिहाज से उसका दायरा ज़्यादा व्यापक साबित हुआ। *एकलव्य* के दो कार्यक्रमों— प्रशिका अर्थात् प्राथमिक स्तर पर पढ़ाएँ जाने वाले समस्त विषयों से संबंधित नवाचारी कार्यक्रम तथा माध्यमिक स्कूल के स्तर पर सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को एक महती उपलब्धि माना गया। एकलव्य ने सरकारी स्कूलों के बेहद निंदित अध्यापकों पर भरोसा करके व प्रमुख शोध संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों के विभागों के विद्वानों को जोड़कर स्कूली व्यवस्था को नयी ऊर्जा से सराबोर कर दिया।

स्वयंसेवी संस्थाएँ सातवें और आठवें दशक में जड़ पकड़ने लगी थीं। दुर्भाग्य से उनके सांगठनिक ढाँचे पर विद्वानों का ध्यान कम ही गया है। विनोद और उनके सहयोगी *एकलव्य* में एक अलग तरह की व्यवस्था कायम करना चाहते थे। वे एकलव्य को अपने समय की अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं की तर्ज़ पर एक व्यक्ति द्वारा नियंत्रित संगठन नहीं बनाना चाहते थे। उनके ज़ेहन में संगठन की एक ऐसी व्यवस्था थी जिसकी बागडोर किसी अजनबी सरकारी निकाय के बजाय परिषद के सक्रिय सदस्यों और संगठन के कर्मचारियों के हाथों में रहे। उन्होंने यह भी तय किया कि *एकलव्य* किसी एक परिसर में केंद्रित होने के बजाय कई ज़िलों में फैला होगा और उसके कई केंद्र होंगे जिन्हें स्वायत्त ढंग से काम करने का अधिकार होगा। इसके साथ उन्होंने संगठन को औपचारिक संस्थाओं संवादहीन विभाजन से बचा कर उसे सक्रिय कार्यकर्ताओं के समुदाय में ढालने का भी निर्णय लिया। इन आदर्शों

को ज़मीन पर उतारने और उन्हें सांगठनिक ढाँचा देने के लिए बहुत बड़ी राशि की दरकार थी। इसे हासिल करने के लिए सरकार के साथ बातचीत करना और भी टेढ़ा काम था। इस काम में एक ओर सरकार के सामने अपना पक्ष रखते हुए उसे राज़ी करना पड़ता था तो दूसरी ओर विरोधी विचारों से भी जूझना पड़ता था। यह एक दुष्कर काम था जो हमेशा विनोद के हिस्से में रहता था। उन्हें फंडर और सरकार से धन का यह प्रबंध एक ऐसी संस्था के लिए करना पड़ता था जिसका मिजाज़ बेहद लोकतांत्रिक और संघीय था। साथ ही, उन्हें अपने समूह को भी यह बात समझानी पड़ती थी कि किसी एक केंद्र के इर्द-गिर्द, जवाबदेही और अनुशासित ढंग से काम करना लोकतांत्रिक उसूलों के ख़िलाफ़ नहीं जाता और इस चीज़ से ख़ुद संगठन का ही भला होता है। *एकलव्य* के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों— प्रशिका, समाज-विज्ञान और प्रकाशन कार्यक्रमों को शुरू करने में भी विनोद की अहम भूमिका रही। बच्चों की पत्रिका *चकमक* शुरू करवाने में उनकी ख़ास दिलचस्पी थी। विनोद ने हिंदी के अख़बारों के लिए विज्ञान फ़ीचर सेवा भी शुरू की थी। भोपाल गैस त्रासदी और बाद में नर्मदा बचाओ आंदोलन के दौरान एक समय ऐसा भी आया जब उनके लिए संगठन को यह समझाना मुश्किल होता गया कि इतना सब होने के बावजूद सरकार के साथ क्यों और कैसे काम किया जाए।

आठवाँ दशक ख़त्म होते-होते यह साफ़ होने लगा था कि राज्य ऐसे नवाचारी कार्यक्रमों और उनके क्रियान्वयन में स्वयंसेवी संस्थाओं की केंद्रीयता को स्वीकार नहीं कर रहा है। अब तक यह भी ज़ाहिर हो चुका था कि *एकलव्य* जैसा संगठन इन कार्यक्रमों को ख़ाली अपने बूते पर व्यवस्थित ढंग से नहीं चला सकता। इससे स्वयंसेवी संस्था और सरकार की साझेदारी के स्वरूप और नवाचार के भविष्य को लेकर बहस खड़ी होने लगी। बहस के इस माहौल में विनोद ने यह विचार रखा कि समान विचारधारा वाले समूहों का एक राष्ट्रीय नेटवर्क बनाया जाए। उनका एक सुझाव यह भी था कि नेटवर्क के जरिये होशंगाबाद कार्यक्रम के नवाचारी तत्त्वों का प्रसार करते हुए सम्बद्ध समूहों की संख्या को इस स्तर पर ले जाया जाए कि एक समय के बाद वह मुख्यधारा की व्यवस्था पर प्रभाव डालने की स्थिति में आ जाए। लेकिन *एकलव्य* के बाक़ी लोग इसे लेकर विनोद की तरह उत्साहित नहीं थे। उनकी राय थी कि *एकलव्य* को काम की गुणवत्ता और गम्भीरता पर ज़्यादा ध्यान देना चाहिए। नतीजतन अगले एक दशक में विनोद और *एकलव्य* के बीच यह दूरी बढ़ती चली गयी और अंततः उन्होंने एकलव्य में पूर्णकालिक कार्यकर्ता की भूमिका को अलविदा कह दिया। पर औपचारिक संबंधों की समाप्ति के बावजूद वे *एकलव्य* की गतिविधियों और महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श में बदस्तूर हिस्सा लेते रहे।

उनका एक सुझाव यह भी था कि नेटवर्क के ज़रिये होशंगाबाद कार्यक्रम के नवाचारी तत्त्वों का प्रसार करते हुए सम्बद्ध समूहों की संख्या को इस स्तर पर ले जाया जाए कि एक समय के बाद वह मुख्यधारा की व्यवस्था पर प्रभाव डालने की स्थिति में आ जाए। लेकिन *एकलव्य* के बाक़ी लोग इसे लेकर विनोद की तरह उत्साहित नहीं थे। ... नतीजतन अगले एक दशक में विनोद और *एकलव्य* के बीच यह दूरी बढ़ती चली गयी और अंततः उन्होंने *एकलव्य* में पूर्णकालिक कार्यकर्ता की भूमिका को अलविदा कह दिया।

भोपाल गैस त्रासदी और नर्मदा बचाओ आंदोलन

भोपाल गैस त्रासदी (1984) कई मायनों में एक युगांतरकारी घटना थी। इसने न केवल उद्योगीकरण और हरित क्रांति के उत्साह को स्वाहा कर दिया बल्कि विज्ञान के शांतिपूर्ण उपयोग पर भी सवाल खड़े कर दिये। इससे औद्योगिक सुरक्षा के उल्लंघन और पीड़ित लोगों के अधिकारों के हनन के मामले में राज्य और बहुराष्ट्रीय निगमों की मिली-भगत भी बेपर्द हो गयी। त्रासदी से उपजे माहौल में नये तरह के जनांदोलन प्रकट होने लगे जो किसी पार्टी से तो संबंधित नहीं थे पर उनकी एक ख़ास

राजनीतिक दृष्टि थी जो किसी मुद्दे से प्रभावित लोगों को गोलबंद करने पर ज़ोर देती थी। जनांदोलनों की इस नयी राजनीति ने *एकलव्य* जैसे संगठनों के सामने क्या करें क्या न करें का संकट खड़ा कर दिया। ऐसे संगठन इस आंदोलन में शिरकत भी करना चाहते थे और साथ ही सरकारी स्कूलों की व्यवस्था में अपनी जगह भी नहीं गँवाना चाहते थे। क्या ऐसे संगठन सरकार को नाराज़ किये बिना राज्य विरोधी एजेंडे में शामिल हो सकते थे?

भोपाल गैस पीड़ितों का आंदोलन जैसे-जैसे आगे बढ़ा, विनोद और अनिल सद्गोपाल के रास्ते अलग होते गये। सद्गोपाल के विपरीत विनोद इस आंदोलन को राजनीति से दूर रखना चाहते थे जबकि सद्गोपाल राज्य और बहुराष्ट्रीय निगम, दोनों को निशाना बना रहे थे। विनोद केरल शास्त्र साहित्य परिषद (केएसएसपी) के नज़रिये के ज़्यादा नज़दीक थे जो बहुराष्ट्रीय निगमों को ज़्यादा बड़ा अपराधी मानता था। विनोद ने भोपाल गैस त्रासदी को लेकर 1987 में केएसएसपी, ख़ास तौर पर एम.पी. परमेश्वरन के साथ मिल कर एक देशव्यापी जत्थे का आयोजन किया। आल इण्डिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क का गठन इस आयोजन के बाद ही किया गया था। साइंस नेटवर्क के लिए काम करने के दौरान विनोद का ज़मीनी स्तर पर काम करने वाले संगठनों— भोपाल ग्रुप फ़ॉर इनफ़ॅर्मेशन ऐंड एक्शन तथा कैम्पेन अगेंस्ट इंदिरा सागर डैम के साथ भी नाता बना रहा। ग़ौरतलब है कि नर्मदा बचाओ आंदोलन की नींव में ऐसे संगठनों की ख़ास भूमिका थी। ऑल इण्डिया साइंस नेटवर्क से जुड़ने वाले कुछ समूह बड़े बाँधों को विकास के लिए ज़रूरी मानते थे। जबकि विनोद इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि पुनर्वास का मसला न्यायपूर्ण ढंग से हल किया जाना चाहिए। वे बड़े बाँधों को सस्ती ऊर्जा और सिंचाई के लिहाज़ से भी अनुपयोगी समझते थे। हरसूद में 28 सितंबर, 1989 को आयोजित ऐतिहासिक रैली में आदिवासी जनता और निमाड़ के किसानों के बड़े हिस्सों तथा बाबा आम्टे और मेधा पाटकर जैसी शख़्सियतों ने भाग लिया था। इस रैली के आयोजन में विनोद की अहम भूमिका रही थी। विनोद उन चंद लोगों में थे जिन्होंने नर्मदा बाँध के प्रस्तावित लाभों की गहरी तकनीकी, वैज्ञानिक और आर्थिक पड़ताल करते हुए सरकार और बाँध के पैरोकारों के दावों पर सवालिया निशान लगाये। बाँध के संबंध में प्रचारित किये जा रहे दावों की यह समीक्षा अदालती झमेलों के दौरान नर्मदा बचाओ आंदोलन के लिए बड़ा कारगर सिद्ध हुई थी। देश के शिक्षित मध्यवर्ग में नर्मदा बचाओ आंदोलन को इन्हीं प्रयासों के दम पर व्यापक वैधता हासिल हुई थी। विकास के नाम पर किया जा रहा विस्थापन तभी से विनोद का स्थायी सरोकार बन गया। बाद में उन्होंने एशिया के कई विद्वानों के साथ मिलकर 1992 में अरेना प्रेस द्वारा प्रकाशित एक किताब *द डिस्पज़ैस्ड्स : विक्टिम्स ऑफ़ डिवेलपमेंट इन एशिया* का सम्पादन भी किया। इस किताब में चीन, दक्षिण-पूर्व एशिया सहित एशिया के तमाम देशों में विस्थापितों की दयनीय स्थिति का मुआयना किया गया था।

विनोद उन चंद लोगों में थे जिन्होंने नर्मदा बाँध के प्रस्तावित लाभों की गहरी तकनीकी, वैज्ञानिक और आर्थिक पड़ताल करते हुए सरकार और बाँध के पैरोकारों के दावों पर सवालिया निशान लगाये। विनोद और उनके साथियों द्वारा बाँध के संबंध में प्रचारित किये जा रहे दावों की यह समीक्षा अदालती झमेलों के दौरान नर्मदा बचाओ आंदोलन के लिए बड़ी कारग़र सिद्ध हुई थी। देश के शिक्षित मध्यवर्ग में नर्मदा बचाओ आंदोलन को इन्हीं प्रयासों के दम पर व्यापक वैधता हासिल हुई थी। विकास के नाम पर किया जा रहा विस्थापन तभी से विनोद का स्थायी सरोकार बन गया।

साक्षरता आंदोलन तथा भारत ज्ञान-विज्ञान समिति

जन-विज्ञान समूहों के बीच 1985 में जब निकटता बढ़ी तो उसका एक परिणाम यह हुआ कि बच्चों

में विज्ञान व अन्य विषयों की पढ़ाई के प्रति रुचि जगाने के लिए नये तौर-तरीक़े आजमाये जाने लगे। संगठन के सदस्यों ने इन तरीक़ों की देश के अन्य भागों में भी आज़माइश करके देखी। जन-विज्ञान समूहों की पहलक़दमी से प्रेरित होकर ऑल इण्डिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क ने जन-शिक्षा के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया। 1989 में संपूर्ण साक्षरता के एर्नाकुलम अभियान की सफलता के बाद नव-गठित भारत ज्ञान-विज्ञान समिति ने इस अभियान को देशव्यापी स्तर पर चलाने का फ़ैसला किया। साक्षरता के क्षेत्र में काम करने वाले एम.पी. परमेश्वरन जैसे लोगों के साथ विनोद ने भी इस प्रक्रिया में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। विनोद राष्ट्रीय साक्षरता अभियान के सदस्य भी रहे। विनोद को देश के दूरदराज़ के इलाक़ों में काम कर रहे ज़मीनी संगठनों के बीच जाकर बात करना, महत्त्वपूर्ण मसलों की शिनाख़्त करना और उन्हें सरकार के सबसे ऊँचे स्तरों पर पेश करना तथा इन मसलों का हल तलाशने के लिए उनकी बारीक़ियों की पड़ताल करना सबसे प्रीतिकर लगता था। उन्हें यह अच्छी तरह पता था कि अभियान की सफलता को देखकर कई राज्य झूठे आँकड़े गढ़ने लगे थे और सम्पूर्ण साक्षरता के संबंध में फ़र्ज़ी दावे करने लगे थे। अभियान के असर में राज्य सरकारों ने एक ऐसा विमर्श भी खड़ा करने की कोशिश की थी जो साक्षरता और शिक्षित लोगों की तस्वीर को बढ़ा-चढ़ा कर पेश कर रहा था। लेकिन शिक्षा व्यवस्था पर सम्पूर्ण शिक्षा अभियान के सकारात्मक प्रभाव को देखते हुए विनोद इस तरह की आलोचनाओं को ज़्यादा तूल नहीं देते थे।

विनोद मानते थे कि देश में प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने की माँग के पीछे साक्षरता अभियान की विशेष भूमिका रही है। उन्हें लगता था कि साक्षरता के महत्त्व को आत्मसात् करने के बाद लोगबाग स्कूलों की ख़राब हालत स्वत: सवाल उठाने लगेंगे और यह समझने लगेंगे कि व्यापक निरक्षरता के लिए स्कूल क्यों और किस तरह ज़िम्मेदार हैं। विनोद का यक़ीन था कि साक्षरता अभियान के कारण अधिकाधिक बच्चे स्कूल जाने लगे हैं और प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौम बनाने की माँग ने स्कूली-तंत्र को मजबूर कर दिया है कि वह सच्चाई को कुबूल करे। इस दबाव से बचने के लिए अनेक राज्यों ने सरकारी स्कूलों की व्यवस्था को कमज़ोर बनाने के लिए पैरा-अध्यापकों की नियुक्ति का सहारा लिया और पैरा-स्कूल स्थापित करने शुरू कर दिये (मध्य प्रदेश सरकार की एजुकेशन गारंटी स्कीम आदि)। विनोद इस गोरख-धंधे के सख़्त आलोचक थे, बावजूद इस तथ्य के कि सरकार में बैठे जिन लोगों ने इन योजनाओं को अंजाम दिया था उनमें से कई लोग विनोद के काफ़ी क़रीबी रहे थे। विनोद ने इन क़दमों की खुले तौर पर भर्त्सना की। वे सरकारी स्कूलों में बढ़ती स्तरहीनता तथा ख़ास तौर पर हिंदी पट्टी में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा संचालित स्कूलों के बढ़ते प्रसार से बेहद क्षुब्ध थे। उन्हें लगता था कि इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए भारत ज्ञान-विज्ञान समिति के तत्वावधान में समुदाय समर्थित स्कूल स्थापित किये जाने चाहिए। देश के कई भागों में ज्ञान-विज्ञान शाला स्थापित करने का विवादास्पद निर्णय इसी पृष्ठभूमि से निकला था। इस फ़ैसले का कई राज्यों की ओर से विरोध भी किया गया क्योंकि ज्ञान-विज्ञान शाला के तहत पढ़ाई का बोझ अभिभावकों पर डाल दिया

वे सरकारी स्कूलों में बढ़ती स्तरहीनता तथा ख़ास तौर पर हिंदी पट्टी में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा संचालित स्कूलों के बढ़ते प्रसार से बेहद क्षुब्ध थे। उन्हें लगता था कि इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए भारत ज्ञान-विज्ञान समिति के तत्वावधान में समुदाय समर्थित स्कूल स्थापित किये जाने चाहिए। देश के कई भागों में ज्ञान-विज्ञान शाला स्थापित करने का विवादास्पद निर्णय इसी पृष्ठभूमि से निकला था। इस क़दम से शिक्षा के निजीकरण की बू भी आ रही थी। परंतु इसके बावजूद ज्ञान-विज्ञान शाला खोलने के विचार को मुल्तवी नहीं किया गया और एक के बाद एक कई हज़ार ज्ञान-विज्ञान शालाओं की स्थापना की गयी। और विनोद इस काम को दुरुस्त करने में मसरूफ़ हो गये।

गया था। साथ ही उसमें शिक्षा के निजीकरण की बू भी आ रही थी। परंतु इसके बावजूद ज्ञान-विज्ञान शाला खोलने के विचार को मुल्तवी नहीं किया गया और एक के बाद एक कई हज़ार ज्ञान-विज्ञान शालाओं की स्थापना की गयी। और विनोद इस काम को दुरुस्त करने में मसरूफ़ हो गये।

एक नयी दुनिया की ओर

1992 में सोवियत संघ के पतन और उसके बाद वामपंथी आंदोलनों में उपजी निराशा से विनोद भी गहरे में क्लांत हुए थे। उस दौर में वे अक्सर फ़ैज़ की यह मार्मिक नज़्म दोहराया करते थे : 'अब तुम ही कहो क्या करना है'। लेकिन विनोद पर यह निराशा ज़्यादा समय तक तारी नहीं रही और उन्होंने जल्द ही बराबरी और न्याय की दुनिया का ख़्वाब फिर बुनना शुरू कर दिया।

विस्थापन के मुद्दे पर काम करते हुए विनोद दुनिया के अनेक विद्वानों और कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आये थे। यहाँ से उनकी दिलचस्पी कार्बन उत्सर्जन जैसे पर्यावरण सम्बंधी विषयों और वार्ताओं में बढ़ने लगी। विकास और विकल्प के नये मॉडलों को समझने के लिए उन्होंने दक्षिणी अमेरिका की ओर देखना शुरू किया। ऊर्जा संकट का हल करने के मामले में विनोद क्यूबा के प्रयासों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे, क्योंकि उनके अनुसार क्यूबा ऊर्जा के इस संकट को तक़नीकी विकल्पों की खोज और शिक्षा व्यवस्था में तदनुरूप बदलाव किए बिना हल नहीं किया जा सकता था। विनोद विश्व सामाजिक मंच के सक्रिय सहभागी थे। मंच के मुम्बई अधिवेशन में उनकी ख़ास भूमिका रही थी। भारत के अंदरूनी परिदृश्य की बात की जाए तो विनोद केरल में पंचायती स्तर पर चल रहे नियोजन सम्बंधी प्रयोगों को लेकर काफ़ी उत्साहित थे। एम.पी. परमेश्वरन और विनोद एक ऐसे समाज का सपना देख रहे थे जिसमें साम्यवाद की बराबरी और गाँधी का ग्राम स्वराज एक ही डाल पर बैठे दिखाई देते थे। परमेश्वरन को अपनी इस हिमाक़त के लिए मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में अपने पद से हाथ धोना पड़ा।

शिक्षा का अधिकार

सामाजिक महत्त्व के मसलों पर सोचते हुए विनोद इस सम्भावना की टोह लेना चाहते थे कि क्या राज्य पर क़ानूनी दबाव बनाकर इच्छित बदलाव पैदा किया जा सकता है। इस सम्भावना की तलाश विनोद को अधिकार केंद्रित दृष्टि की ओर ले गयी। बहुत सम्भव है कि इस मामले में विनोद सूचना अधिकार की सफलता और उसमें न्यायिक सक्रियता की सम्भावना से भी मुतास्सिर रहे हों। ग़ौरतलब है कि उन्नीकृष्णन-फ़ैसले में शिक्षा के अधिकार को जीवन के अधिकार का अंग बताया गया था जिससे सरकार पर अधिकार को परिभाषित करने का दबाव पैदा हो गया था और उसे अंतत: संविधान में संशोधन करना पड़ा। संशोधन के तहत केंद्रीय सरकार पर यह आयद हो गया था कि वह शिक्षा के अधिकार को क़ानूनी शक्ल दे। विनोद इसे राज्य पर प्राथमिक शिक्षा के लिए एक कानूनी ढाँचा तैयार करने के एक अवसर के तौर पर देख रहे थे। जीवन के आख़िरी दशक में विनोद एक तरफ़ इस ख़्वाब को हक़ीक़त में बदलने की लड़ाई लड़ रहे थे और दूसरी ओर कैंसर से जूझ रहे थे। इस लड़ाई के कई वैचारिक मोर्चे थे : एक तरफ़ मानव संसाधन मंत्रालय के बाबू, वित्त मंत्रालय और योजना आयोग थे जो धन पर कुंडली मारे बैठे थे, तो दूसरी तरफ़ कानून मंत्रालय के पेचोख़म थे। शिक्षा संबंधी क़ानून के विभिन्न मॉडलों पर अमल करने के लिए दीर्घकालिक वित्त व्यवस्था की ज़रूरत थी। वित्त मंत्रालय को यह बात समझाने के लिए उन्हें लम्बा संघर्ष करना पड़ा। इसके लिए उन्हें कई समझौते करने पड़े पर ग़नीमत यह रही कि इससे मिलने वाली क़ामयाबियाँ भी कम सार्थक नहीं थीं। विनोद को यक़ीन था कि एक बार क़ानून बन जाने और शिक्षा के अधिकार को न्यायिक हैसियत मिल जाने के बाद यह अधिकार न्यायिक सक्रियता के ज़रिये ख़ुद-ब-ख़ुद मज़बूत होता चला जाएगा। यही

वजह थी कि विनोद अधिकार में स्तरीयता या गुणवत्ता के मसले को शामिल करना एक बड़ी उपलब्धि मानते थे। क़ानून में 2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा प्रस्तावित मानकों को संदर्भ माना गया था। इसलिए उन्हें लगता था कि पाठ्यक्रम के साम्प्रदायिकीकरण की किसी सम्भावित स्थिति में, जैसा कि राजग सरकार के दौरान एक बार हो भी चुका था, न्यायिक सक्रियता चीज़ों को ख़ुद ही दुरुस्त कर देगी। उन्हें यह उपलब्धि कम बड़ी नहीं लग रही थी कि आज़ादी के साठ सालों के बाद आख़िरकार सभी बच्चों को स्कूल जाने का मौक़ा मिल रहा था। और कानून के तहत इन स्कूलों को अपने यहाँ न्यूनतम सुविधाओं की भी गांरटी करनी पड़ रही थी। देश में तीन-चौथाई स्कूल सुविधाओं के इन मानकों पर ख़रे नहीं उतरते। लिहाज़ा सुविधाओं का छोटे से छोटा पैमाना भी सरकार को भारी-भरकम निवेश के लिए मजबूर कर देता है। सरकार की बेशर्मी देखिए कि वह यह न्यूनतम राशि भी ख़र्च नहीं करना चाहती। विनोद निजी स्कूलों में वंचित तबकों के पच्चीस फ़ीसदी छात्रों को अनिवार्य रूप से प्रवेश देने के प्रावधान को बड़ी बात नहीं मानते थे, जिसे लेकर ऐसे स्कूल अदालत का दरवाज़ा खटखटाते रहे हैं। उनका मानना था कि इससे वंचित तबकों के तो मुट्ठी भर छात्रों का ही भला होगा पर एलीट स्कूलों को ज़रूर समावेशी बनने का अवसर मिलेगा।

अधिनियम पारित हो जाने के बाद विनोद उसके नियमन का ढाँचा तैयार करने में व्यस्त थे। वे राज्य सरकारों के सामने इस बात की पैरवी करने में लगे थे कि अधिनियम के प्रावधान क़ानून की भावना के अनुरूप बनाये जाएँ। इसके लिए उन्हें विभिन्न राज्यों की राजधानियों के चक्कर लगाने पड़ते थे और अधिकारियों व मंत्रियों के साथ बैठकें करनी होती थीं। इस सिलसिले में उन्हें अधिनियम के विरोधियों से, जिनमें उनके कई पुराने सहयोगीयों और दोस्त थे, भी जूझना पड़ रहा था। अनिल सद्गोपाल जैसे कटु आलोचकों की दलील थी कि अधिनियम में शिक्षा के अधिकार को कतर दिया गया है क्योंकि उन्नीकृष्णन-फैसले में आयु की कोई सीमा नहीं रखी गयी थी। सद्गोपाल की एक दलील यह भी थी कि अधिनियम में बराबरी के मुद्दे को जगह नहीं दी गयी। ऐसे कई मामलों में अधिनियम वाक़ई कमजोर साबित हुआ था और उसने निजी शिक्षण संस्थाओं की भूमिका पर भी मुहर लगा दी थी। यह निस्संदेह सरकार का अपनी ज़िम्मेदारी से पीछे हटना था और शिक्षा में बराबरी के सरोकार को खत्म करना था। कई अन्य आलोचकों ने औपचारिक स्कूलों को प्राथमिकता देने और सभी स्कूलों को एक खाने में रखे जाने की प्रवृत्ति पर भी सवाल खड़े किए। विनोद इस अधिनियम की हिमायत में अकेले दम लड़ते रहे। अधिनियम की कमज़ोरियों को वे भी स्वीकार करते थे पर उनका मानना था कि अगर क़ानून को अमली जामा पहनाने के लिए निगरानी समूह गठित कर दिए जाएँ तो बात आगे बढ़ सकती है। अधिनियम के पक्ष में उनकी खास दलील यह थी कि देश में सामाजिक असमानता की भयावहता को देखते हुए समान शिक्षा की बात करना एक ख़ामख़याली है लेकिन इन हालात में कम से कम यह तो किया ही जाना चाहिए कि सर्वाधिक वंचित वर्गों के बच्चे, जिन्हें अब तक स्कूल जाने का मौका ही नहीं मिला है, स्कूलों का मुँह देख सकें और थोड़ी बहुत स्तरीय शिक्षा हासिल कर सकें। अपने आप में यह भी कम बड़ा काम नहीं था पर इसके लिए भी राज्‍ य को बाज़ाब्ता मजबूर करना जरूरी था।

विनोद रैना अपनी बात बहुत सफ़ाई से रखते थे और अपनी इस ख़ूबी का इस्तेमाल करने में माहिर थे। व्यक्तिगत सम्बंधों में वे बेहद उदार और संवेदनशील थे। विरोधी दृष्टिकोण को देर तक और दूर तक जगह देते थे। उनमें एक समय के बाद आलोचना को एक तरफ़ रख कर काम पर पिल जाने की क़ुव्वत थी। विनोद को इसका भारी ख़मियाजा चुकाना पड़ा। उन्हें कई सारे नज़दीकी दोस्तो और सहयोगी खोने पड़े। उन्होंने इस अजाब को सहा पर अपने ध्येय के प्रति अटल रहे। शायद यह कहना ग़ैरज़रूरी होगा कि विनोद के दोस्तों, सहयोगियों और आलोचकों को उनके नज़रिये की बेबाकी, प्रतिबद्धता और उनकी विनम्रता लम्बे समय तक खलती रहेगी।